अमर उजाला
नई दिल्ली ■ सोमवार, 17 अक्तूबर 2022

प्रवाह

महोत्सव विश्वास का
75
निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना वर्ष : 1948

> आपका लक्ष्य किसी जादू से नहीं पूरा होगा, बल्कि आपको ही अपना लक्ष्य प्राप्त करना पड़ेगा।
> - बाल गंगाधर तिलक

हिंदी में मेडिकल की पढ़ाई की शुरुआत निस्संदेह एक साहसी पहल है, लेकिन इसकी सफलता सुनिश्चित करना भी बहुत जरूरी है। इसके लिए आवश्यक है कि विशेषज्ञता और गुणवत्ता से कोई समझौता न किया जाए।

एक जरूरी पहल

मध्य प्रदेश में हिंदी माध्यम में मेडिकल की पढ़ाई की शुरुआत निस्संदेह एक साहसी पहल है, जिसकी सराहना की जानी चाहिए। अभी तक देश के किसी भी मेडिकल कॉलेज में हिंदी में पढ़ाई नहीं होती थी। लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत ही, जिसमें छात्रों को शिक्षा उनकी मातृभाषा में उपलब्ध कराए जाने पर जोर है, मध्य प्रदेश में मेडिकल की पढ़ाई हिंदी में शुरू करने की परियोजना शुरू हुई। इसके तहत प्रदेश के 97 डॉक्टरों की एक टीम ने चार महीने में मेडिकल के प्रथम वर्ष की तीन पुस्तकों-एनाटॉमी, फिजियोलॉजी और बायोकेमेस्ट्री का हिंदी में अनुवाद किया, जिनका कल गृहमंत्री अमित शाह ने भोपाल में लोकार्पण किया। इस पहल का उद्देश्य मेडिकल की पढ़ाई को ग्रामीण क्षेत्रों और हिंदी माध्यम से पढ़ाई करने वाले छात्रों के लिए आसान बनाना है। मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के मुताबिक, आने वाले समय में राज्य में इंजीनियरिंग और पॉलिटेक्नीक कॉलेजों में भी हिंदी में पढ़ाई होगी। यह पहलकदमी ऐसे अवसर पर की गई है, जब गृहमंत्री की अध्यक्षता वाली संसदीय राजभाषा समिति की उस सिफारिश की खासकर दक्षिण भारत में आलोचना हो रही है, जिसमें हिंदी भाषी राज्यों के उच्च शिक्षा संस्थानों में तकनीकी व गैर तकनीकी शिक्षा-हिंदी में तथा गैर हिंदी भाषी राज्यों में स्थानीय भाषाओं में कराने की बात कही गई है। मेडिकल की अंग्रेजी किताबों के हिंदी अनुवाद से बेशक हिंदी प्रदेश के असंख्य छात्रों को सुविधा होगी। अच्छी बात यह भी है कि अनुवाद में तकनीकी शब्दों को नहीं बदला गया है। जाहिर है कि हिंदी को महत्व देते हुए भी इस क्षेत्र की विशेषज्ञता और गुणवत्ता से कोई समझौता नहीं होना चाहिए। लेकिन सिर्फ पाठ्यक्रम के अनुवाद से बात नहीं बनने वाली। चूंकि मेडिकल साइंस में लगातार खोजें और शोध होते रहते हैं, जिनकी रिपोर्टें ज्यादातर अंग्रेजी जर्नलों में छपती हैं, ऐसे में, लाजिमी यह भी होगा कि इन नवीनतम खोजों का तत्काल हिंदी अनुवाद कराया जाए। लिहाजा

हिंदी में मेडिकल की पढ़ाई की शुरुआत एक उल्लेखनीय पहल होने के साथ-साथ इसकी सफलता सुनिश्चित करना भी बहुत जरूरी है, जिसके लिए सतत और व्यापक प्रयासों की जरूरत पड़ेगी। चूंकि यह कदम हिंदी और ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं को आगे बढ़ाने के लिए उठाया गया है, लिहाजा उम्मीद करनी चाहिए कि देश में मेडिकल शिक्षा को सस्ती और सुलभ बनाने के साथ इस क्षेत्र में व्याप्त तमाम विसंगतियों को दूर करने की दिशा में भी कदम उठाया जाएगा।

पश्चिम से अलग है हमारी धर्मनिपेक्षता

भारतीय धर्मनिरपेक्षता को उदात्त रूप में 'सर्वधर्म समभाव' (यानी सभी धर्मों का बराबर सम्मान) के स्तर पर माना गया है, जो इसे पश्चिम की धर्मनिरपेक्षता से कुछ हद तक अलग करती है। भारत के प्रमुख धर्मों में सर्वधर्म समभाव को व्यावहारिक रूप में समान संरक्षण के रूप में लिया जाता है।

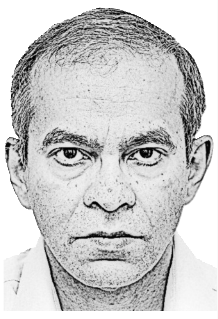

स्वागतो गांगुली
वरिष्ठ पत्रकार

भारतीय धर्मनिरपेक्षता को उदात्त रूप में 'सर्वधर्म समभाव' (यानी सभी धर्मों का बराबर सम्मान) के स्तर पर माना गया है, जो इसे पश्चिम की धर्मनिरपेक्षता से कुछ हद तक अलग करती है। इसके प्रमुख सिद्धांत को दार्शनिक और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने ईश्वर और मनुष्य के बीच सौहार्दपूर्ण सद्भाव के रूप में स्वीकार किया है, जबकि पश्चिम में इन दोनों के बीच विरोध को ज्यादा चिह्नित किया गया है। भारत के प्रमुख धर्मों में सर्वधर्म समभाव को व्यावहारिक रूप में समान संरक्षण के रूप में लिया जाता है, जो धर्म और राज्य के अलगाव की पश्चिम की व्यापक समझ से अलग है।

इस अंतर को भारतीय धर्मनिरपेक्षता के समर्थकों, राधाकृष्णन द्वारा व्यापक रूप से धर्मनिरपेक्षता के एक प्रकार के रूप में माना गया है, जो भारतीय परिस्थितियों के ज्यादा अनुकूल है। उदाहरण के लिए, राजनीतिक विज्ञानी राजीव भार्गव कहते हैं कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता ने धर्म और राज्य के बीच अलगाव की सख्त दीवार खड़ी नहीं की, बल्कि इनके बीच एक सैद्धांतिक दूरी का प्रस्ताव दिया। इसके अलावा व्यक्तियों और धार्मिक समुदायों के दावों के बीच संतुलन बनाते हुए इसने कभी धर्मों के निजीकरण को चोट पहुंचाने का इरादा नहीं रखा।

लेकिन, ऐसी 'सैद्धांतिक दूरी' समय की कसौटी पर कितना खरा उतरी है, और यह कितनी सैद्धांतिक रही है? या क्या धर्मनिरपेक्षता की ऐसी न्यूनतम समझ एक फिसलन पैदा करती है, जो अंततः इसे कमजोर बना देती है? यह धर्मनिरपेक्षता की औपनिवेशिक परिभाषाओं, या धार्मिक समन्वयवाद की पूर्व-औपनिवेशिक किस्मों, जैसे सम्राट अकबर की दीन-ए-इलाही से कितना अलग है?

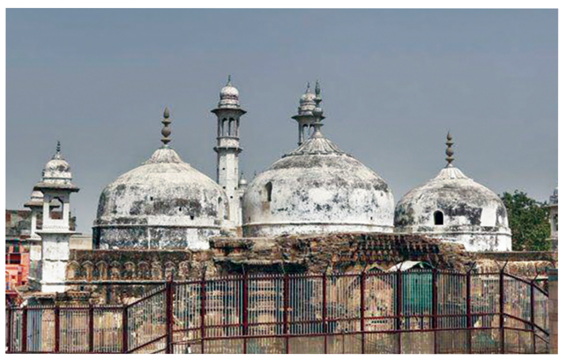

इन मुद्दों को ज्ञानवापी मस्जिद के ताजा विवाद ने फिर से उजागर कर दिया है, और बाबरी मस्जिद जैसे विवाद के फिर से उभरने की आशंका है। और इसने भारत की धर्मनिरपेक्षता की स्थिति को एक बार फिर से सुर्खियों में ला दिया है, जिसे सांविधानिक रूप से बनाए रखने की राज्य को शपथ दिलाई गई है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा 2019 में एक सर्वसम्मत फैसले से एक रेखा खींची गई, ताकि धार्मिक स्थलों पर ऐसे विवादों की पुनरावृत्ति को रोका जा सके। पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1991 में कहा गया था कि किसी भी पूजा स्थल के धार्मिक चरित्र को 15 अगस्त, 1947 के अनुसार बनाए रखा जाएगा, जब भारतीय धर्मनिरपेक्षता लागू हुई। बाबरी मस्जिद को अपवाद के रूप में रखा गया, क्योंकि यह माना गया कि इस पर 1947 से पहले से विवाद चल रहा था।

यह उम्मीद जताई गई थी कि इससे धार्मिक स्थलों पर विवादों की पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा, लेकिन उस पर तब पानी फिर गया, जब वाराणसी की एक अदालत ने हिंदू याचिकाकर्ताओं द्वारा वहां दैनिक पूजा की अनुमति देने के लिए दायर याचिका पर मस्जिद के अंदर हिंदू कलाकृतियों का पता लगाने के लिए ज्ञानवापी मस्जिद के सर्वेक्षण का आदेश दिया। उनके वकील ने दावा किया कि सर्वेक्षण से मस्जिद के वजूखाने (नमाज से पहले हाथ-मुंह धोने की जगह) के अंदर एक शिवलिंग मिला, और अदालत ने वजूखाने को सील करने का आदेश दिया था। इसने भानुमति का पिटारा खोल दिया, जिसमें पूरे भारत में अन्य मस्जिदों के बारे में ऐसे ही दावे किए जा रहे थे।

लगता है कि ऐसे विवाद के अंतहीन धार्मिक संघर्ष की आशंका ने हिंदू राष्ट्रवादी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को भी चिंतित कर दिया है, जिसके प्रमुख मोहन भागवत ने हाल ही में टिप्पणी की कि हर मस्जिद में शिवलिंग की तलाश क्यों? व्यवहार में भारतीय धर्मनिरपेक्षता पर विमर्श भारतीय धर्म पर औपनिवेशिक विमर्श के साथ निरंतरता बनाए रखता है, जो दक्षिणपंथी हिंदू राष्ट्रवाद की समकालीन अभिव्यक्तियों को भी प्रभावित करता है। भारत को इतना अधिक धार्मिक भूमि माना जाता है कि धर्मनिरपेक्षता को मानक अर्थों में भारत के लिए अनुपयुक्त समझा जाता है। धर्म और राज्य को अलग करने के बजाय (जिसे 'पश्चिमी' विचार के रूप में देखा जाता है) भारतीय धर्मनिरपेक्षता का संबंध मुगल सम्राट अकबर की दीन-ए-इलाही से अधिक करीबी हो सकता है। यह ऐसा पंथ था, जिसने अपने साम्राज्य में मौजूद सभी धर्मों के तत्वों को समकालिक रूप से मिलाने का प्रयास किया।

धर्म और राज्य को अलग करने की पश्चिमी धारणा के स्थान पर सभी धर्मों को संरक्षण देने की आकांक्षा ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता को कई दरारों में फंसा दिया है, क्योंकि एक धर्म के पक्ष में उठाए गए कदम को दूसरे पक्ष के लिए शत्रुतापूर्ण व्यवहार के रूप में देखा जाता है। यह धर्मनिरपेक्षता को पहचान की राजनीति में फंसा देता है। धर्म-आधारित पर्सनल लॉ का मुद्दा भारत की धर्मनिरपेक्षता की दुविधाओं को उजागर करता है। यह वैश्विक धर्मनिरपेक्षता से अलग है और कुछ हद तक पड़ोसी पाकिस्तान की तरह है, जहां की राजनीति धर्मनिरपेक्ष होने के बजाय धर्म आधारित है, जिसमें यह विवाह, तलाक, या विभिन्न धर्मों के उत्तराधिकार से संबंधित मामलों में अलग-अलग व्यक्तिगत कानूनों का समर्थन करता है। धर्मनिरपेक्ष भारत और इस्लामी पाकिस्तान, दोनों को पर्सनल लॉ ब्रिटिश राज से विरासत में मिले हैं, जिनकी कानून व्यवस्था ऐसे मामलों में धार्मिक न्यायशास्त्र पर निर्भर थी। धर्मनिरपेक्षता को धर्मों के प्रति राज्य की तटस्थता के बजाय बहु-धार्मिकता के रूप में परिभाषित करने के बाद भारतीय राजनीति मुश्किलों से जूझती रही है। धर्मनिरपेक्षता की इस धारणा के साथ समस्या यह है कि यह समुदायों को चारदीवारी के रूप में देखती है और व्यक्तियों को उनकी निर्धारित पहचान के कैदी के रूप में, जो न तो नागरिकता के आधुनिक विचारों से मेल खाता है और न ही किसी व्यक्ति को अपना फैसला स्वयं करने देने के प्रति उदार है।

हाल ही वरिष्ठ कांग्रेसी नेता मनीष तिवारी ने एक सवाल उठाया कि क्या धर्मनिरपेक्षता का मतलब सर्वधर्म समभाव है, या अब समय आ गया है कि हम धर्मनिरपेक्षता की नेहरूवादी परिभाषा पर लौटें, जिसका मतलब धर्म और राज्य के बीच सख्त अलगाव था? हालांकि नेहरू ने इसे कभी लागू नहीं किया और न ही उनके किसी उत्तराधिकारी ने। भारत की धार्मिक दरारों को ठीक करने के लिए कई विकल्प आजमाए गए हैं, लेकिन धर्मनिरपेक्षता की उदार समझ को कम ही आजमाया गया है।

edit@amarujala.com

आजादी के अमृत कथन

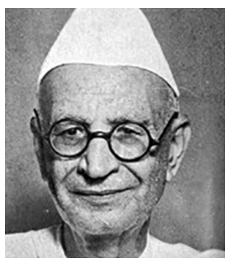

ए. वी. ठक्कर
(1869-1951)

> जनजातीय क्षेत्र आपके देश में हैं और यहीं रहेंगे। इसलिए सरकार से मैं यह अनुरोध करूंगा कि इन भाइयों की समुन्नति के लिए संविधान के प्रवर्तन में आने के पहले वह कोष दें।

जनजातीय क्षेत्र इसी देश में हैं और यहीं रहेंगे

अध्यक्ष महोदय, डॉ. आंबेडकर के संशोधन को शामिल कर लेने पर बोल रहा हूं। यह संशोधन अपने ढंग पर बहुत अच्छा है। जिन प्रांतों में विस्तृत जनजातीय और अनुसूचित-क्षेत्र हैं, उनको रकम देने के लिए इस अनुच्छेद में पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। कुछ प्रांत तो इसके लिए काफी संपन्न हैं कि अपने पिछड़े हुए प्रदेशों के भाइयों के जीवन-स्तर को समुन्नत बनाने में सहायता दे सकें, पर कुछ ऐसे भी प्रांत हैं, जो इतने संपन्न नहीं है कि उनकी सहायता कर सकें। इसलिए तो इस अनुच्छेद में आवश्यक प्रावधान रख दिया गया है कि ऐसे प्रांतों को रकम मिल सके।

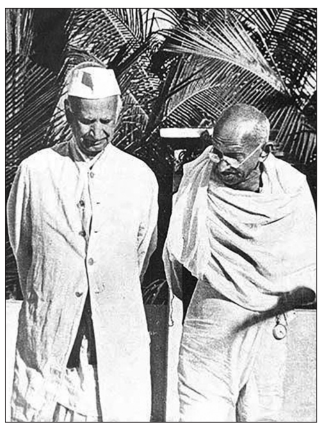

> हमारा यह कर्तव्य है कि हम इन बंधुओं को अपने में मिलाकर उन्हें अपने राष्ट्रीय समाज का एक अंग बना दें। अभी हमने उनको समाज से पृथक कर रखा है और वे आबाद हैं पहाड़ों पर और घाटियों में, जो भयंकर मलेरिया वाले स्थान हैं।

जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है, यह बहुत ही अच्छा है। इस सहायता के लिए संविधान में ही जो प्रावधान कर दिया गया है, इसके लिए मैं सभा तथा संविधान रचयिताओं को कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। संविधान में इस संबंध में जो प्रावधान रखे जा रहे हैं, उनसे लोग बहुत आशा लगाए बैठे हैं। गरीब प्रांत, जिनके पास धन नहीं है, जो धनाभाव में आज भूखों मर रहे हैं, केंद्रीय सरकार से इस काम के लिए कुछ न कुछ पाने की जरूर उम्मीद रखते हैं। गरीब प्रांतों से मेरा मतलब है उड़ीसा और आसाम से है। आसाम का प्रश्न कुछ पेचीदा है। इन प्रांतों में जनजातियों की एक बड़ी आबादी है। उड़ीसा में इनकी आबादी 35 लाख और आसाम में करीब 24 लाख है। इस पिछड़ी हुई जनसंख्या की समुन्नति के लिए ये प्रांत कोई भी रकम खर्च करने में असमर्थ हैं। संविधान में इनकी दशा को सुधारने का वचन दिया गया है। पर इस वचन की पूर्ति के लिए जो कुछ भी हम कर सकते हैं, वह तीन वर्ष बाद ही कर सकते हैं। इसके पहले नहीं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल इस प्रश्न पर खूब गंभीरता और सावधानी के साथ विचार करके, अगर सभी जनजातीय क्षेत्रों के लिए नहीं, तो कम से कम आसाम और उड़ीसा के जनजातीय क्षेत्रों के लिए, शीघ्र कोई रकम दें।

माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यहां यह सुझाव दिया है कि भारत के सभी जनजातीय क्षेत्रों को मिलाकर उनकी एक इकाई बना देनी चाहिए। इस सुझाव के बारे में मैं यह जरूर कहूंगा कि जनजातियों का अहित करने के लिए ऐसे सुझाव ही सर्वोत्तम उपाय हैं। सवाल यह है कि देश की आम आबादी से उनको अलग रखना चाहते हैं या उनको अपने में मिलाकर उन्हें राष्ट्र का अंग बना लेना चाहते हैं?

हमारा यह कर्तव्य है श्रीमान, कि हम इन बंधुओं को अपने में मिलाकर उन्हें अपने राष्ट्रीय समाज का एक अंग बना दें। अभी हमने उनको समाज से पृथक कर रखा है और वे आबाद हैं पहाड़ों पर और घाटियों में, जो भयंकर मलेरिया वाले स्थान हैं। क्या आप उन्हें और दूर कर देना चाहते हैं? माफ कीजिएगा, ऐसे सुझाव से उनका कोई हित नहीं हो सकता है। उनकी सेवा का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उनकी समुन्नति के लिए केंद्रीय कोष से पर्याप्त रकम दीजिए और इनको पृथक करने का या मिलाने का सवाल ही कहां उठता है। जनजातीय क्षेत्र आपके देश में हैं और यहीं रहेंगे। इसलिए भारत सरकार से मैं यह अनुरोध करूंगा कि इन भाइयों की समुन्नति के लिए, संविधान के प्रवर्तन में आने के पहले वह कोष दें। संविधान में कोरा कागजी वायदा कर देने से तो काम नहीं चलेगा।

-9 अगस्त, 1949 को भारतीय संविधान सभा में दिए गए भाषण के संपादित अंश।

भूली बिसरी दास्तान

1950 के दशक में गुलाब बाई ने अपनी खुद की नौटंकी मंडली ग्रेट गुलाब थिएटर कंपनी बनाई।

जीते-जी किंवदंती बन गईं गुलाब बाई

वह 1931 की गर्मियां थीं। उस दिन कानपुर में उमस भरी गर्मी के बाद शाम को हुई फौरी ठंडक में नगाड़ा बजते ही लोग मेले की ओर दौड़ पड़े। उस दिन बच्चे, बूढ़े और जवान सभी के पैरों में थिरकन और मन में गजब का जोश कुलांचे भर रहा था। धीरे-धीरे शाम गहराने लगी और मेले में सरगर्मी बढ़ गई। देखते ही देखते पंडाल ठसाठस भर गया। अब सबको नौटंकी शुरू होने का इंतजार था। लोगों की आंखें मंच के पर्दे पर थीं कि कब उठेगा और जुबान पर उस अदाकारा का नाम था, जो नौटंकी की नई और इकलौती महिला सनसनी थी। उसका नाम था गुलाब बाई।

बाद के सालों में यह मंजर आम हो गया और गुलाब भाई की महक पूरे देश में फैल गई। गुलाब बाई, गुलाब जान के नाम से भी मशहूर हुईं। गुलाब बाई से पहले नौटंकी में महिलाओं की भूमिका पुरुष निभाया करते थे। फर्रुखाबाद की गुलाब बाई ने 13 साल की उम्र में कानपुर की नौटंकियों में कई स्वांग धरे। नौटंकी की तुलना पश्चिम के ओपेरा से की जा सकती है। उन्होंने 1931 में कानपुर घराने के उस्ताद त्रिमोहन लाल और हाथरस घराने के उस्ताद मोहम्मद खान से गायन की बाकायदा तालीम ली। बाद में 1950 के दशक में गुलाब बाई ने त्रिमोहन लाल से अलग अपनी खुद की नौटंकी मंडली ग्रेट गुलाब थिएटर कंपनी बनाई। गुलाब बाई नौटंकी की पहली ऐसी कलाकार थीं, जो अपने जीते-जी किंवदंती बन गईं। नौटंकी के अच्छे जानकार फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी *मारे गए गुलफाम* पर बनी फिल्म *तीसरी कसम* में हिरामन, हीराबाई से पूछता है- आप किस जिला से आई हैं। हीराबाई कहती है-कानपुर। बताते हैं कि हीराबाई का चरित्र गुलाब बाई से प्रेरित था। बहरहाल, 1996 में गुलाब बाई के निधन के साथ ही मंच के एक चमकते युग का अंत हो गया। केंद्र सरकार ने 1990 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया। उन पर आलेख और किताबें भी लिखी गईं, लेकिन उनके हुनर को उस कदर नहीं सहेजा गया, जिसकी दरकार थी। कभी सितारों की सितारा रहीं गुलाब बाई के सुरों के मीड, गमक, खटका कहीं खो गए हैं। कानों में मिश्री घोलते उनके छंद, दादरा, ठुमरी, ढोलक की थाप और नगाड़े की धमक कहीं अंधियारे में गुम गई है। महफिलों में आज भी उसके गाने-*पान खाए सइयां हमारे* और *नदी नारे न जाओ श्याम पैया पड़ूं*, गुलाब बाई की याद दिलाते हैं। ये गाने उन्होंने नौटंकी में गाए थे। इन्हें फिल्म वालों ने बिना उनको श्रेय दिए चुरा लिए।

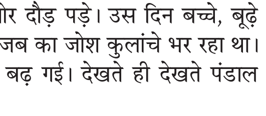

विनोद पुरोहित

गुलाब बाई ने 1931 में कानपुर घराने के उस्ताद त्रिमोहन लाल और हाथरस घराने के उस्ताद मोहम्मद खान से गायन की तालीम ली।

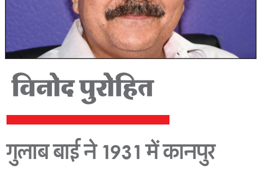

गुलाब बाई नौटंकी की पहली ऐसी कलाकार थीं, जो अपने जीते-जी किंवदंती बन गईं। केंद्र सरकार ने 1990 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया, लेकिन उनके हुनर को उस कदर नहीं सहेजा गया।

आंकड़े

क्षेत्रीय उड़ान भरने वाले यात्री

भारतीय विमान प्राधिकरण के क्षेत्रीय संपर्क योजना के तहत वर्ष 2021-22 में तेइस लाख यात्रियों ने उड़ान भरी।

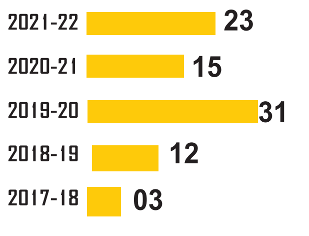

(यात्रियों की संख्या लाख में) स्रोत : एमओसीए

महाराजा कनिष्क धर्मपरायण शासक थे। अपने अंतिम दिनों में वह भगवान बुद्ध के अहिंसा के सिद्धांत में विश्वास करने लगे थे।

अनूठी शर्तें

अंतर्यात्रा
शिवकुमार गोयल

अयोध्या में एक साधारण परिवार में जन्मे अश्वघोष प्रभावशाली कवि थे। उनकी विद्वत्ता की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। मगध के राजा ने उन्हें राजकवि की पदवी दी। अश्वघोष ने भगवान बुद्ध के जीवन पर आधारित महाकाव्य की रचना की।

मगध की समृद्धि से चिढ़कर आस-पास के कई राजा उनके विरोधी बन गए। मौका पाकर राजा कनिष्क ने पूरी तैयारी कर मगध को चारों ओर से घेर लिया। राजा व प्रजा को लगने लगा कि किसी भी दिन कनिष्क की सेना राज्य पर कब्जा कर लेगी, लेकिन महाराजा कनिष्क धर्मपरायण शासक थे। अपने अंतिम दिनों में वह भगवान बुद्ध के अहिंसा के सिद्धांत में विश्वास करने लगे थे। उन्होंने एक दिन दूत के मार्फत मगध के राजा के पास पत्र भेजा। दूत ने वहां जाकर बताया कि राजा कनिष्क खून-खराबे को पाप मानते हैं। लेकिन उनकी दो शर्तें हैं, उन्हें स्वीकार कर युद्ध टाल दें।

मगध के राजा ने शर्त सुनाने को कहा। पत्र में लिखा था कि भगवान बुद्ध द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला भिक्षापात्र तथा राजकवि अश्वघोष हमें सौंप दें। हम लौट जाएंगे। मगध के राजा ने खुशी-खुशी शर्तें मान लीं। कनिष्क ने अश्वघोष को बौद्ध सभा का अध्यक्ष बनाया। मगध सम्राट को संतोष था कि उनके राजकवि को इतना प्रमुख सम्मान मिला।

(अमर उजाला आर्काइव से)

अमर उजाला पुराने पन्नों से

20 जुलाई, 1969

मोरारजी देसाई का इस्तीफा स्वीकार

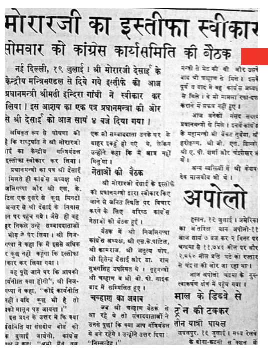

मोरारजी का इस्तीफा स्वीकार
सोमवार को कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक

नई दिल्ली, १९ जुलाई। श्री मोरारजी देसाई के केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से दिये गये इस्तीफे को आज प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने स्वीकार कर लिया। इस आशय का एक पत्र प्रधानमन्त्री की ओर से श्री देसाई को आज सायं ४ बजे दिया गया।

एक सौ सम्वाददाता उनके घर के बाहर इकट्ठे हो गए थे, लेकिन उन्होंने कहा कि मैं आज नहीं मिलूंगा।

नेताओं की बैठक

श्री मोरारजी देसाई के इस्तीफे को प्रधानमन्त्री द्वारा स्वीकार किए जाने से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिए वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं की बैठक हुई।

बैठक में श्री निजलिंगप्पा कांग्रेस अध्यक्ष, श्री एस.के.पाटिल, श्री कामराज, श्री अतुल्य घोष, श्री हितेन्द्र देसाई और डा. राम सुभगसिंह उपस्थित थे। गृहमन्त्री श्री चव्हाण व श्री वी. पी. नाइक बाद में सम्मिलित हुए।

चव्हाण का जवाब

जब श्री चव्हाण बैठक से आ रहे थे तो संवाददाताओं ने उनसे पूछा कि क्या आप मंत्रिमंडल में बने रहेंगे। उन्होंने उत्तर दिया: "निस्सन्देह।"

अपोलो

माल के डिब्बे से ट्रेन की टक्कर
तीन यात्री घायल

श्री मोरारजी देसाई के केंद्रीय मंत्रिमंडल से दिया गया इस्तीफा आज प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने स्वीकार कर लिया। इस आशय का एक पत्र प्रधानमंत्री की ओर से श्री देसाई को आज शाम चार बजे दिया गया।

शेख हसीना से बढ़ी उम्मीदें

बांग्लादेश में इस बार दुर्गापूजा में हिंसा नहीं हुई। उम्मीद है कि शेख हसीना इसी तरह हिंदुओं पर साल भर होने वाले अत्याचार के सिलसिले को भी रोकेंगी।

बिमल राय

बांग्लादेश

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना का शुक्रिया कि उन्होंने अपना वादा निभाया और इस बार की दुर्गापूजा में कट्टरपंथियों की वहां के किसी पूजा पंडाल में विघ्न पैदा करने की हिम्मत नहीं हुई। दुर्गापूजा से पहले अपनी भारत यात्रा के दौरान हसीना ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से वादा किया था कि इस बार पूजा में वह पिछली बार जैसी ध्वंस लीला दोहराने नहीं देंगी। पिछले साल दुर्गापूजा पर वहां कम से कम 1,650 हिंदुओं के घर फूंके गए, 343 हिंदू मंदिर तोड़े गए या उनमें आग लगा दी गई, 14 से अधिक हिंदुओं की हत्याएं हुईं, 26 हिंदू महिलाओं से बलात्कार हुआ और सैकड़ों लोग गंभीर रूप से घायल हुए थे।

बांग्लादेश में इस बार पिछली बार से ज्यादा 32,168 जगहों पर दुर्गापूजा का आयोजन किया गया था। हालांकि बांग्लादेश की सरकार ने बंगाल की ममता सरकार की तरह दुर्गापूजा के आयोजकों को किसी प्रकार का अनुदान नहीं दिया था। इंटरनेशनल हिंदू वॉयस आफ बांग्लादेश के अध्यक्ष हाराधन देव का कहना है कि शेख हसीना ने इस बार तहेदिल से चाहा, तभी दंगे नहीं हुए। पिछली बार भी सरकार ने पूजा पंडालों पर पुलिस की तैनाती की थी, पर जैसे ही दंगाई आए, ज्यादातर जगहों पर पुलिस निष्क्रिय हो गई। लेकिन इस बार हर इलाके के सांसद, विधायक और निकाय प्रमुखों को सरकार ने कड़ी चेतावनी दी थी। बांग्लादेश जातीय हिंदू महाजोट के महासचिव व प्रवक्ता गोविंद चंद्र प्रामाणिक कहते हैं कि चूंकि 2024 में शेख हसीना को आम चुनाव का सामना करना है, इस कारण भी वह पिछले साल की बदनामी के दाग धोना चाहती थीं।

बांग्लादेश में सत्ता-विरोधी हवा की भी सुगबुगाहट है। अगर ऐसे में, भारतीय प्रधानमंत्री को दिया गया वचन टूटता, तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बांग्लादेश की बदनामी होती और मानवाधिकार संगठनों को बोलने का मौका मिलता।

बांग्लादेश में लगभग आठ प्रतिशत हिंदू हैं और इनका पूरा वोट हसीना की पार्टी को ही जाता है। बांग्लादेश की पांच संसदीय सीटों-मोकेसपुर-काशियानी, गोपालगंज-काशियानी, तुंगीपाड़ा-कोटालीपाड़ा, मोल्लारहाट-फकीरहाट, बैठाघाट-डकोप पर हसीना उनके परिवार व करीबी नेता चुनाव लड़ने के इच्छुक होते हैं, क्योंकि इन सीटों पर 65 प्रतिशत वोट हिंदुओं के हैं।

बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) की नेता खालिदा जिया शेख हसीना की हत्या का षड्यंत्र रचने के आरोप में जेल में बंद थीं, मगर अभी जमानत पर हैं। कई असाध्य रोगों से जूझने के कारण उन्होंने अपने बेटे तारिक रहमान को पार्टी का कार्यकारी अध्यक्ष बनाया है। अगले चुनाव में जीत के लिए बीएनपी विगत 22 अगस्त से दो महीनों तक देशव्यापी विरोध रैलियां निकाल रही है। इस दौरान नारायणगंज, भोला और मुंशीगंज में पार्टी के चार नेता और कार्यकर्ता मारे गए, हजारों कार्यकर्ताओं पर हमला किया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। विगत 10 सितंबर से बीएनपी केवल राजधानी ढाका में रैलियां आयोजित कर रही है। यहां भी बीएनपी नेता और अवामी लीग के कार्यकर्ता आपस में भिड़े। 16 जगहों पर रैलियों का कार्यक्रम तेजगांव रैली के साथ खत्म होना था, लेकिन इसे एक अक्तूबर तक बढ़ाया गया।

तारिक रहमान ज्यादातर समय लंदन में रहते हैं, इसलिए पार्टी के महासचिव मिर्जा फखरूल इस्लाम आलमगीर ने इन रैलियों की अगुवाई की। बीएनपी नेता चाहते हैं कि चुनाव से पहले एक निरपेक्ष सरकार गठित की जाए और उसी की देखरेख में चुनाव कराए जाएं। वे हसीना सरकार पर चुनावों में धांधली का आरोप लगाते रहे हैं। वर्ष 2008 के चुनाव में बुरी तरह पराजित होने के बाद 2014 में बीएनपी ने आम चुनाव का बहिष्कार किया था। देश के ज्यादातर कट्टरपंथी मुस्लिम संगठन खालिदा के खेमे में हैं, ऐसे में, शेख हसीना को संतुलन साधकर चलना पड़ता है।

दूसरी तरफ, शेख हसीना से यह उम्मीद है कि वह केवल पूजा के दौरान नहीं, बल्कि हिंदुओं पर साल भर होने वाले अत्याचार को रोकेंगी और अपने देश से कट्टरपंथ के दानव के विसर्जन का प्रयास जारी रखेंगी।